International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor- 5.414, Volume 4, Issue 9, September 2017
Website- www.aarf.asia, **Email** : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

डॉ० जगदीश गुप्त के काव्य में सामाजिक चिंतन

डॉ. कामना कौशिक
विभागाध्यक्षा हिन्दी
सी.एम.के. नैश्नल पी.जी.
गर्ल्ज महाविद्यालय, सिरसा।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के कारण उसकी कुछ सामाजिक आवश्यकताएं होती हैं। जिन्हें पूरा करने के लिए वह समाज में रहता है तथा समाज द्वारा निर्धारित मान–मूल्यों, परम्पराओं तथा आदर्शों का अनुसरण करता है एवं उनका पालन करता है। समाज शब्द पर विभिन्न विद्वानों ने समय–समय पर अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं। उनमें में से कुछ विद्वानों के विचार इस प्रकार से हैं–

डॉ० नर्मदेश्वर अनुसार– ''मनुष्य ऐसे सामाजिक संगठन का निर्माण तथा पुनर्निर्माण करता है, जो उसके आचार–विचार और व्यवहार को ठीक रास्ते पर ले जाएं और उस पर नियन्त्रण रखे। मनुष्य का संगठन समाज कहलाता है।''[1]

मैकाइवर तथा पेज अनुसार– ''मनुष्य में जो चाल–चलन है, जो कार्यविधियां हैं, पारस्परिक सहायता की जो प्रवृत्ति है, शासन की जो भावना है, जो अनेक समूहों, विभागों में विद्यमान है, मानव व्यवहार के सम्बन्धों में जो स्वतन्त्र व मर्यादाएँ हैं, उनकी व्यवस्था को समाज कहते हैं। इस निरन्तर परिवर्तित होती हुई जटिल व्यवस्था को समाज कहा जाता है। यह सामाजिक संबंधों का ताना–बाना है, जो सदा परिवर्तित होता रहता है।''[2]

निःसन्देह समाज से परे मानव जाति की कल्पना करना असंभव है। डॉ० गुप्त जी सामाजिक महत्ता को भली–भाँति समझते हैं तथा जानते हैं इसलिए इनके काव्य में सामाजिक चिंतन का पक्ष काफी सशक्त रूप से अभिव्यक्त हुआ है। बहुमुखी प्रतिभा संपन्न डॉ० जगदीश गुप्त हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के महान रचनाकार हैं। इनकी विशिष्ट प्रतिभा के कारण इन्हें 'मैथिलीशरण गुप्त सम्मान', 'भारत–भारती' जैसे अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया था। संयुक्त परिवार से आपको आध्यात्मिकता तथा उर्दू का ज्ञान विरास्त में प्राप्त हुआ। आप अपनी प्रतिभा के बल पर विश्वविद्यालय की अनेक प्रमुख समितियों के सदस्य रहे हैं तथा अनेक राष्ट्रीय संगठनों के प्रमुख पदाधिकारी के रूप में भी अपने दायित्व का निर्वहन किया है। आपकी गहन सूक्ष्म दृष्टि के कारण ब्रज साहित्य मंडल ने आपको गुजराती और ब्रजभाषा में कृष्णकाव्य का तुल्नात्मक अध्ययन करने के लिए सहस्त्र पुरस्कार से विभूषित किया तथा इस कार्य के लिए

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

आपको डीःलीट् की उपाधि भी दी गई। आपने 'नाव के पाँव', 'शब्द दंश', 'हिम–विद्ध', 'गोपा–गौतम' तथा 'शम्बूक' इत्यादि काव्य संग्रहों की रचना कर मानव जीवन को सही दिशा दिखाने का सराहनीय प्रयास किया। आपकी रचनाएं मानव जीवन का समग्र चित्र प्रस्तुत करने में सफल रही हैं।

चिन्तनशील प्रवृत्ति के कारण आप अपने आस–पास के वातावरण व परिस्थिति के प्रति जागरूक थे। जिसके कारण आपकी रचनाओं में राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय स्तर के घटनाक्रमों का चित्रण प्रस्तुत हुआ है। व्यापक स्तर पर एक लेखक का चिन्तनशील होना समस्त मानव जाति के लिए शुभ संकेत है। इसी में मानव जाति की भलाई निहीत है। जगदीश गुप्त जी की यहीं दृष्टि हमें संकुचित विचारधारा व तुच्छ स्वार्थों को त्यागने की प्रेरणा देती है तथा देश–काल–सीमा से परे सोचने का ज़ज्बा उत्पन्न करती हैं। उस समय वक्त की मांग के अनुरूप इन्होनें अपनी लेखनी को अपनी आवाज़ बनाकर जनता को जागरूक करने का स्तुत्य प्रयास किया। आपकी रचनाओं ने अन्य देशों को भी भारत देश की सहायता के लिए प्रोत्साहित किया, जिससे भारतीय जनमानस उल्लासित और रोमांचित होकर स्वतन्त्रता के आन्दोलन में तन–मन–धन से लीन हो गए। गुप्त जी हिम–शिखर के रूप में सहयोगी देशों की कल्पना करते हुए स्वयम् भारत देश से परिचित हो, भारत देश के सम्पूर्ण विकास की कल्पना की चाह मन में संजोए हुए कह उठते हैं–

''दूध के अधउगे दाँत–सी
कोर हिम–श्रृंग की
फूटी फिर
उस स्लेटी बादल की ओर से
चलता हूँ
अरे ! तनिक ठहरो भी,
पहले मैं इस शिशु का
पूरा मुख तो निहार लूँ।''[3]

स्वतंत्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार हैं। पराधीन मनुष्य कभी भी सुखी नहीं रह सकता तथा समाजहित में उसके योगदान की अपेक्षा करना गलत होगा। अतः सर्वप्रथम मनुष्य को स्वयम् के अस्तित्व की रक्षा करनी होगी इसी से वह समाज कल्याण में अपना योगदान दे सकेगा तथा मानव जाति को ऊँचा उठाने में अपना सार्थक योगदान दे पाएगा। प्रसन्नचित्त व आनन्दित मनुष्य से सकारात्मक परिणाम की आशा करना उचित हैं। गुप्त जी इस तथ्य से भली–भाँति परिचित है। वे कहते है–

''शुभ्र हिम–शिखरों की
सुषमा के भार से
झुकी–झुकी अभिमन्त्रित
–शाखें देवदारू की।
हिम–श्री को छूने के
निर्मल उल्लास से
उठे–उठे रोमांचित
सूची–गुच्छ चीड़ के।''[4]

जीवन में आगे बढ़ने की लालसा होना जरूरी है। यहीं लालसा मनुष्य को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है तथा मार्ग में आए अवरोधों से लड़ने की शक्ति देती हैं। मनुष्य अपने सपने को तभी साकार कर सकता है जब वह अपनी कमियों तथा अवगुणों को दूर कर गुणों तथा अच्छाइयों को ग्रहण कर अपनी मंजिल की ओर अग्रसर होता हैं मनुष्य को अपने सीमित साधनों से निराश नहीं होना चाहिए। गुप्त जी मनुष्य के आगे बढ़ने की लालसा और परिस्थितिवश उसमें उत्पन्न हुई निराशा पर प्रकाश डालते हुए कहा है–

''इसमें, उसमें–
अनगिन धन्धों में, उलझा हूँ
शिखरों से दूर हूँ
पाऊँ जो पंख
अभी हिम–जल से अभिमन्त्रित
घाटी में तिर जाऊँ
लेकिन मजबूर हूँ।''[5]

समस्त भारतवासियों के प्रयासों से 15 अगस्त 1947 को हम आजाद हो गए और हमारे अनेकों ख्वाब़ साकार होने लगे। तरक्की की लालसा में हम पाश्चात्य देशों की तरह अनैतिक हथकण्ड़े अपनाने लगे। वैज्ञानिक तरक्की के नशे में चूर होकर घृणित कुकृत्य करने लगे। इतना ही नहीं प्रकृति के साथ भी छेड़–छेड़ करने लगे। गुप्त जी ने मनुष्य को सचेत करते हुए कहा कि–

''अरे मानवों!
अणु बम विस्फोट से.....
कच्चे अण्डे जैसी पृथ्वी यदि फूट गयी
क्या होगा हम सबका ?
चाहते नहीं हो यदि संस्कृति का सर्वनाश
युद्ध को– तिलांजलि दो।''[6]

गुप्त जी केवल कहने के लिए कवि धर्म नहीं निभाते थे, वे एक सच्चे समाज–सुधारक भी थे। उनका चिन्तन खोखली बातें करने वालों पर करारा व्यंग्य भी करता है तथा भविष्य की चिन्ता कर उन्हें सावधान करने की कौशिश भी करता है। मनुष्य के कृत्रिम व्यवहार व उसके खोखलेपन पर व्यंग्य करते हुए कवि कहता है कि–

''विश्व संस्कृति का समावृत खोखलापन
'शब्द है फुंकार'
कह कर डस गया
आतंक–शापित मनुज
गारूड़ी ! ओ गारूड़ी!!
तुम ह्रदय तल के क्षीर सागर में अभी तक सो रहे हो।''[7]

जिस प्रकार जन्म और मृत्यु मनुष्य जीवन की शाश्वत सच्चाई है ठीक उसी प्रकार नाश और निर्माण के मध्य मानव जीवन की गतिशीलता भी जीवन का सत्य हैं। अतः मनुष्य को समभाव से आगे बढ़ते

रहना चाहिए, यहीं जीवन है। जीवन का ध्येय ऊँचा होना चाहिए जिसमें समस्त मानवता की भलाई हो। इसी से जीवन का महत्त्व है तथा मानव की श्रेष्ठता भी। कवि जीवन के सत्य को उजागर करते हुए कहता है–

''नाश और निर्माण के दोनों ध्रुवों के बीच
सारी जिन्दगी तिरती
जागरण में, स्वपन में, सुख–दुख सँजोये–
ठीक पुतली की तरह फिरती
चिर–शयन बन,
शीश पर जब मृत्यु आ घिरती
फिर नहीं फिरती, नहीं तिरती।''[8]

कवि जीवन की सच्चाई को स्वीकारता है। वह हम सभी में जीवन के उतार–चढ़ाव को समदृष्टि से अपनाने के लिए हिम्मत व जोश का ज़ज्बा तो भरता है ही साथ ही साथ मानव विकास के विभिन्न तत्वों यथा आस्था, श्रृद्धा, नमन, विश्वास आदि की उत्पत्ति में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। कवि की इसी आस्था, श्रृद्धा व नमन भाव को प्रस्तुत पंक्तियों में देखा जा सकता है–

''नमन मेरा हिम–जलद–अभिशिक्त श्रृंगो को
नमन मेरा शान्त सन्ध्यातीत रंगो को
इन्द्रधनु के गुच्छ जिन पर तैरते रहते,
नमन मेरा अलकनन्दा की तरंगों को।''[9]

कवि उदार दृष्टिकोण के साथ मानव को आगे ले जाने का तथा उसे ऊँचा उठाने का प्रयास करता हैं। वह जानता है कि व्यापक दृष्टिकोण में ही मानव जाति की मंगलकामना निहित है। कवि गुप्त जी विराट राष्ट्र की स्थापना कर विराट राष्ट्र को अन्तरराष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए प्रेरित करता है–

''वस्तु को सुन्दर बनाती है
–भावमय दूरी,
चाहे वह
देश ही हो
काल की हो।''[10]

गुप्त जी की विलक्षण प्रतिभा उन्हें विशिष्ट व्यक्तित्व का धनी बनाती है तथा धर्म रक्षा के लिए उनकी आवाज़ को सशक्तता प्रदान करती है। गुप्त जी के सुन्दर व्यापक विचारों का चित्रण दर्शनीय है–

''दो श्रृद्धांजलि
बुद्ध को
धर्म–चक्र के आगे नमन करो,
हिंसा को त्याग दो अहिंसा का वरण करो।''[11]

मानव जीवन में सुन्दर–असुन्दर की परिभाषा स्पष्ट होनी चाहिए। इसी से वह सुन्दर को अपनाता है तथा असुन्दर को त्यागता है। सुन्दर की परिभाषा का ज्ञान होने पर वह संघर्ष से नहीं घबराता। उसे इस तथ्य का ज्ञान भलि भाँति हो जाता है कि जीवन का वास्तविक आनन्द संघर्ष में है। यथा–

''सच हम नहीं सच तुम नहीं।
सच है सतत संघर्ष ही
संघर्ष से हटकर जीये तो क्या जीये हम या कि तुम।
जो नत हुआ वह मृत हुआ ज्यों वृन्त से झर कर कुसुम।''[12]

संघर्ष से मानव जीवन में आशावादी दृष्टिकोण उत्पन्न होता है जिससे वह जीवन में हार नहीं मानता। वह समस्त विरोधों का डटकर सामना करता है तथा समाज की गली–सड़ी कुप्रथाओं का खण्डन करता है। अपने स्वच्छ विचारों से स्वस्थ समाज का निर्माण करता है। गुप्त जी का आत्म–विश्वास एक श्रेष्ठ व आदर्श समाज की स्थापना के लिए मानव जाति को प्रेरित करता है। कवि का दृढ़ संकल्प उनकी लेखनी में स्पष्टतयः परिलक्षित है–

''तो लो दे रहा हूँ
यह धधकता हुआ दृढ़ संकल्प
अपनी आस्था का अस्थिमय अस्तित्व
रच सको तो रचो इससे वज्र घातक क्रूर
कर सको तो करो सीमा के असुर का गर्व चकनाचूर।''[13]

सारांश यह है कि गुप्त जी एक सजग रचनाकार हैं। उनके एक हाथ में परम्परा रही है तो दूसरे हाथ में नवीनता अर्थात् प्रवर्तन। कहने का अभिप्राय यह है कि वे उच्च श्रेष्ठ परम्परागत आदर्शों को मानव जीवन में स्थापित करना चाहते हैं तो जर्जर संकीर्ण परम्पराओं को त्याग कर नवीन श्रेष्ठ उच्च आदर्शों को अपनाने के लिए हमारा आह्वाहन करते है। गुप्त जी के काव्य की यहीं महत्त्वपूर्ण उपलब्धी है। निःसन्देह गुप्त जी ने अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह निभाया है और उनकी चिन्तनशीलता ने समाज का अच्छी तरह अध्ययन कर सामाजिक विषमताओं को दूर करने में सराहनीय योगदान दिया है। सामाजिक चिन्तन के परिणामस्वरूप अनेकों सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। निःसन्देह स्वर्गीय गुप्त जी का विराट व्यक्तित्व व इनकी अजर अमर रचनाएं सदैव हमारे लिए अनुकरणीय रहेंगी।

संदर्भ सूची–

1. नर्मदेश्वर प्रसाद, 'मानव–व्यवहार तथा सामाजिक व्यवस्था', पृ० 201
2. मैकाइवर व पेज सोसाइटी : एन इंट्रोडक्शन एनालिसिस, पृ० 23
3. डॉ० जगदीश गुप्त, 'शब्द दंश : अतर्क्य', पृ० 52
4. डॉ० जगदीश गुप्त, 'हिम विद्ध : शाखें और सूची–गुच्छ', पृ० 73
5. डॉ० जगदीश गुप्त, 'हिम विद्ध : शिखरों से दूर हूँ', पृ० 73
6. डॉ० जगदीश गुप्त, 'शब्द दंश : युद्ध और बुद्ध', पृ० 92
7. डॉ० जगदीश गुप्त, 'शब्द दंश : शब्द दंश', पृ० 87
8. डॉ० जगदीश गुप्त, 'नाव के पाँव : पुतली', पृ० 8
9. डॉ० जगदीश गुप्त, 'हिम विद्ध : दृश्य और शिशु', पृ० 21
10. डॉ० जगदीश गुप्त, 'हिम विद्ध : कल्पना का अंतराल', पृ० 81
11. डॉ० जगदीश गुप्त, 'शब्द दंश : युद्ध और बुद्ध', पृ० 92
12. डॉ० जगदीश गुप्त, 'नाव के पाँव : सच हम नहीं, सच तुम नहीं', पृ० 52
13. डॉ० जगदीश गुप्त, 'हिम विद्ध : संकल्प ', पृ० 93